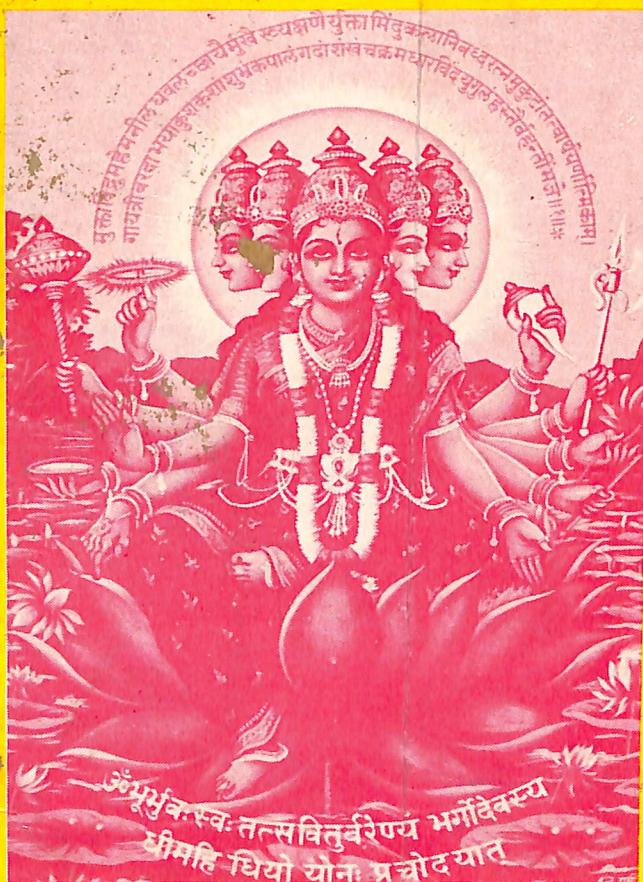
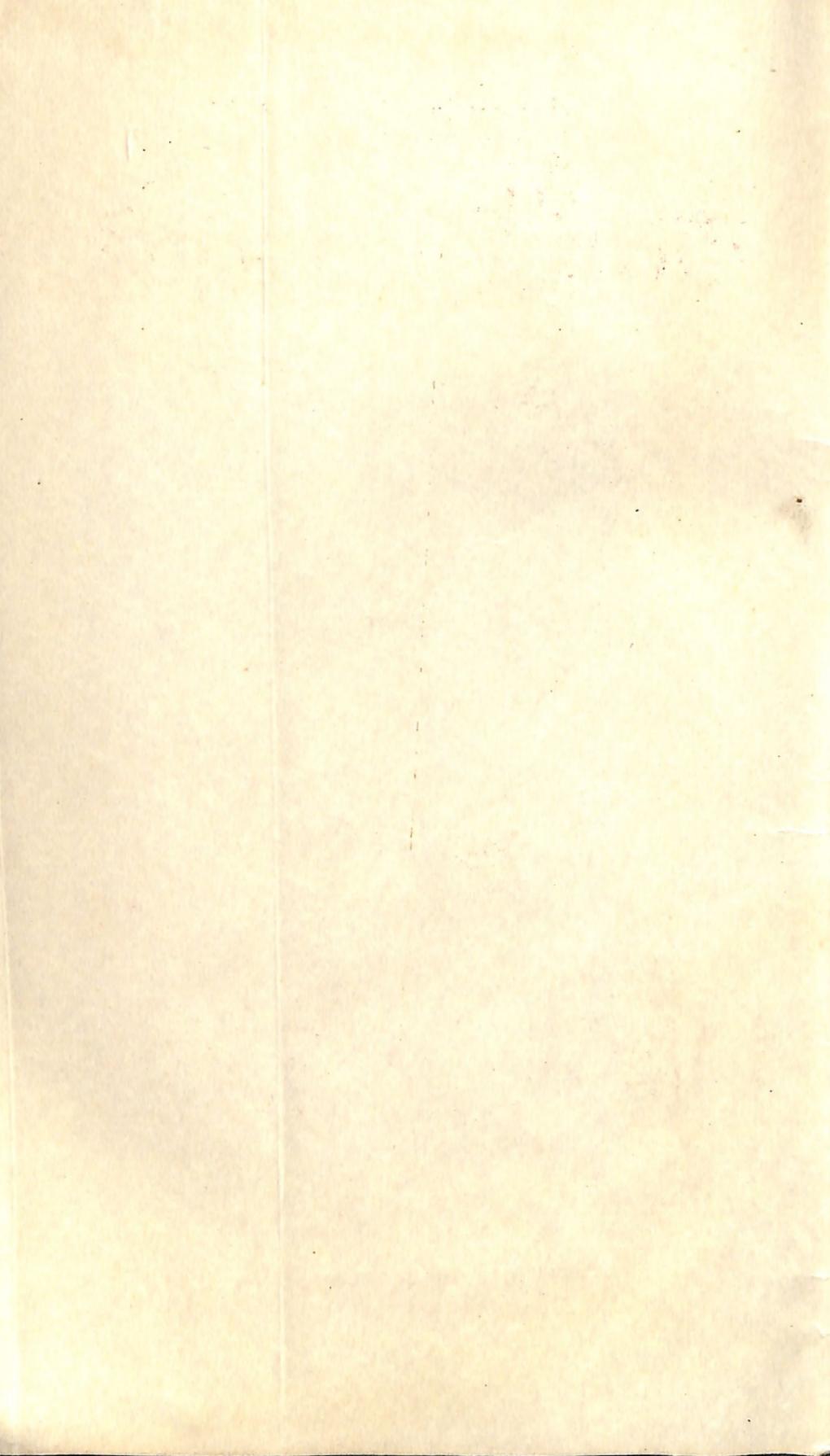


शिवचैतन्यवर्णकृता गायत्रीउपासनापद्धति:



सम्पादकः
डॉ० राष्ट्रेश्याम चतुर्वेदी



श्रीदेविश्वचैतन्यवर्णविरचिता

गायत्रीउपासनापद्धतिः

सम्पादक

डॉ० राधेश्याम चतुर्वेदी

व्याकरणाचार्य, एम. ए., पी—एच. डी.

उपाचार्य

संस्कृत विभाग—कला संकाय

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

प्रकाशिका

श्रीमती उषा शाह

न्यू पनवेल, महाराष्ट्र

अक्षर संयोजन — प्रवीण नेते
कम्प्यूटर कला
लंका, वाराणसी — २२१००५

मुद्रक :
मित्तल आफसेट
सुन्दरपुर, वाराणसी

प्रथम संस्करण — ५०० प्रतियाँ
सन् १९९९ ई०

(सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन)

मूल्य — ५०/-

प्राप्तिस्थान —

१. श्रीदेवचैतन्यवर्णी
मातङ्गेश्वरमन्दिर, माहेश्वर
नेमाड, मध्यप्रदेश

२. श्रीमती उषा शाह
साई पार्क फ्लैट नं. २
सेक्टर नं. — १२
न्यू पनवेल — महाराष्ट्र

गायत्रीसाधनासिद्धसिद्धिसाम्राज्यचुञ्चवे ।
समर्प्यते मया हीयं गायत्र्यर्चनपद्धतिः ॥

शुभाशंसन

गायत्री शब्द से प्रायः सभी लोग परिचित हैं। यह तीन अर्थों को बतलाता है — मन्त्र देवता और छन्द। मन्त्र शब्दात्मक होता है और देवता उसका अर्थ। शब्द और अर्थ में तादात्म्य सम्बन्ध है। इसलिये गायत्री मन्त्र का उच्चारण गायत्री देवता की उपासना है।

प्रस्तुत ग्रन्थ ‘गायत्रीउपासनापद्धति’ इसी गायत्री देवता की पूजा के विधान का संक्षिप्त परिचायक है। गायत्री की सात्त्विक एवं वाम मार्गी दोनों प्रकार की पूजा का विधान शास्त्रों में मिलता है। इस पुस्तक में केवल सात्त्विक उपासना का वर्णन है। गायत्री वेदमाता और विश्वजननी है। इसकी जितनी अधिक उपासना जितने विधि विधान के साथ की जाय उतना ही अधिक और उत्तम फल देने वाली होती है।

इस ग्रन्थ को पाठकों के हाथ मे देकर आशा करता हूँ कि श्रद्धालु जन इसके अनुसार गायत्री की उपासना करेंगे। माँ गायत्री आप सबका कल्याण करे इसी विश्वास एवं भावना के साथ —

देवदीपावली
सं० २०५६

शिवचैतन्य वर्ण
माहेश्वर





पुरोवाक्

सर्वे शाक्ता द्विजाः प्रोक्ता न शैवा न च वैष्णवाः।

आदिशक्तिमुपासन्ते गायत्रीं वेदमातरम् ॥ (दे०भा०११.२१.६)

श्लोक से स्पष्ट है कि गायत्री आदिशक्ति है। शास्त्रों में ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य के लिये गायत्री की उपासना अनिवार्य बतलायी गयी है। विना गायत्रीजप के शारीरिक एवं मानसिक शुद्धि नहीं होती फलतः द्विजगण किसी धार्मिक अथवा आध्यात्मिक अनुष्ठान के लिये योग्य नहीं माने जाते। इसी कारण द्विज लोग शाक्त पहले हैं और शैव वैष्णव पाञ्चरात्र आदि बाद में। गायत्री वेदमाता है। वेद का अवतरण ब्रह्मा के मुख से हुआ है और ब्रह्मा स्वयं गायत्री के मुख से आविर्भूत हुये हैं। वेद अनादि अनन्त ज्ञान राशि का नाम है इसलिये वेदमाता भी अनन्त ज्ञानराशि की जननी अथवा अनन्त ज्ञानराशि स्वरूपा है। जो जिसका जन्मदाता होता है वह जन्म लेने वाले से अधिक महान् होता है। इस प्रकार वेदों की जननी गायत्री वेदों की अपेक्षा अधिक महनीया है। इसीलिये देवी भागवत पुराण कहता है —

पठेच्च चतुरो वेदान् गायत्रीं चैकतो जपेत्।

वेदानां चावृतेस्तद्वत् गायत्रीजप उत्तमः॥ (दे.भा. ११.१९.२३)

गायत्री का रक्षाकर्त्त्व — गायत्री उस महाशक्ति का नाम है जो उसका गान करने वाले की रक्षा करती है। गायत्रं त्रायते इति गायत्री। गायत्रीपद की एक और व्युत्पत्ति है — गयान् = प्राणान् त्रायते इति गायत्री। गायत्री उसे कहते हैं जो प्राणों की रक्षा करती है। प्रश्न उठता है कि वह प्राणों की रक्षा किस प्रकार करती है। गायत्री के मूल मन्त्र जो कि सर्वविदित और सर्वत्र प्रचलित हैं, में सविता के श्रेष्ठ तेज का ध्यान करने की बात कही गयी हैं —

“तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।” सविता सूर्य का दूसरा नाम है। यद्यपि किसी किसी मत में सविता और सूर्य भिन्न हैं। सूर्य के विषय में कहा गया है कि सूर्य समस्त स्थावर जङ्गम का आत्मा है – (सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च)। संसार की सभी वनस्पतियां एवं शस्यसमूह सूर्य के ही द्वारा पोषण एवं वृद्धि प्राप्त करते हैं। ये वनस्पतियाँ और धान्य ही स्थावर एवं जङ्गम के जीवनाधार हैं। मनुष्य से लेकर कीट पतङ्ग यहाँ तक कि स्थावर भी अपने जीवन के लिये सूर्य के प्रकाश पर निर्भर करते हैं। इसलिये सूर्य अथवा सविता समस्त चराचर की रक्षा करता है। दूसरा कारण यह है कि जब हम उस तेजस् का ध्यान करते हैं तो हमारी बुद्धि का उस तेजस् के साथ तादात्म्य (भेदाभेद) सम्बन्ध बन जाता है। यह सम्बन्ध न केवल हमारी बुद्धि अपि तु हमारे समस्त शरीर को तेजोमय बना देता है। तेज मनुष्य अथवा प्राणीमात्र की जीवनीशक्ति है। हम उस सवितृतेज का ध्यान कर अपनी जीवनी शक्ति को बढ़ाते हैं जो हमें आरोग्य और दीर्घ आयुष्य प्रदान करती है। यही गायत्री का गान करने वालों अथवा प्राणियों के प्राणों का रक्षण है।

गायत्री का सर्वव्यापित्व – गायत्री प्राणों की रक्षा करती है। प्राण का अर्थ है नित्य वायु। यह नित्य वायु न केवल इस सौरमण्डल या ब्रह्माण्ड में अपितु अनन्त ब्रह्माण्डों के पुज्जीभूत मायाण्ड और अनन्त मायाण्डों के पुज्जीभूत शाक्ताण्ड और उससे ऊपर वर्तमान परमाशक्ति के आसन तक प्रवहमान है। इस प्रकार गायत्री महाप्राणरूपा है। पुराणों में भगवान् के २४ अवतार, जैनों के चौबीस तीर्थङ्कर, बौद्धों के २४ बोधिसत्त्व सर्वत्र २४ की संख्या तथा मूल गायत्री के २४ अक्षर तथा गायत्रीजप के पूर्व प्रदर्शित की जाने वाली २४ मुद्रायें इसकी सर्वव्यापकता की ओर सङ्केत करती हैं। आदिकाव्य बाल्मीकि रामयण के श्लोकों की कुल संख्या २४ हजार है और प्रत्येक हजारवें श्लोक का पहला अक्षर गायत्री के २४ अक्षरों में से कोई एक अक्षर होता है। उदाहरणार्थ रामायण के पहले श्लोक –

तपःस्वाध्यायनिरतं तपस्वी वाग्विदां वरम् ।

नारदं परिप्रच्छ वाल्मीकिर्मुनिपुङ्गवम् ॥

का पहला अक्षर 'त' गायत्री मन्त्र का पहला अक्षर है।

गायत्री मन्त्र के अतिरिक्त गायत्री नाम की देवता भी है। त्रिकाल सन्ध्या में गायत्री देवता के तीन स्वरूपों के ध्यान का विधान है। प्रातः सन्ध्या में ब्रह्मास्वरूपिणी मध्याह्न में शिवरूपिणी एवं सायं सन्ध्या के समय विष्णुरूपिणी गायत्री का ध्यान शास्त्रों में वर्णित है। इस देवता का प्रातः सन्ध्या के समय बालारूप मध्याह्नसन्ध्या के समय युवती रूप एवं सायं सन्ध्या में वृद्धारूप का ध्यान करने का विधान है।

महाकाली महालक्ष्मी और महासरस्वती अपने मूलरूप में स्त्री देवता है। इसीलिये इनके साथ शङ्कर विष्णु एवं ब्रह्मा नामक पुरुष देवता की व्याप्ति है। इसी प्रकार इन्द्र आदि अन्य पुरुष देवता भी स्त्री देवता के साथ रहते हैं। किन्तु गायत्री न स्त्री है न पुमान्। इसी कारण इसका न कोई सहचर देव है न कोई सहचरी देवी। दूसरी ओर यह पुरुष भी है और स्त्री भी। इस प्रकार यह ब्रह्मरूपिणी है। ब्रह्म की भांति गायत्री भी अपने मूलस्वरूप में निर्गुण निष्क्रिय निरवद्य निरञ्जन है। यतो हि वह शक्तिरूपा है और संसार उससे उत्पन्न हुआ है अतः उसे जननी रूप में मान्यता दी गयी है। मनुष्य के समान देवताओं को भी जब मृत्यु से भय होने लगा तब वे गायत्री की शरण मे गये। गायत्री ने उन्हें अमरत्व का वरदान दिया और अपने वर को सत्यापित करने हेतु वह सभी देवों के विग्रहस्वरूप मन्त्रों में समाविष्ट हो गयी। इसीलिये हनुमान् गणेश भैरव ब्रह्मा लक्ष्मी, सरस्वती काली आदि जितने भी देव देवियाँ हैं, सबके साथ गायत्री संलग्न है। उदाहरण के लिये – ॐ रामदूताय विद्महे कपिराजाय धीमहि तनो हनुमान् (हनुमत्) प्रचोदयात्, इत्यादि मन्त्रों को देखा जा सकता है। २४ अक्षरों वाले प्रचलित गायत्री मन्त्र में तीन पाद हैं – (१) तत्सवितुर्वरिण्यं (२) भर्गो देवस्य धीमहि (३) धियो यो नः प्रचोदयात्। इसीलिये इसे त्रिपदा गायत्री कहा जाता है। चतुर्थपाद की

भी चर्चा शास्त्रों में आती है और वह है — परो रजसेऽसावदोम् ।

मन्त्र और देवता के अतिरिक्त गायत्री नामक छन्द भी है। इस छन्द की महत्ता सर्वछन्दातिशायिनी है। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा है — गायत्री छन्दसामहम्। अर्थात् छन्दों में मै गायत्री हूँ। वेदमन्त्रों को त्रिष्टुप् जगती वृहती शक्वरी अतिशक्वरी अनुष्टुप् आदि नाना छन्दों में उपनिबद्ध किया गया है। गायत्री छन्द उनमें से अन्यतम है। यह छन्द सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि गायत्री मन्त्र इसी छन्द में उपनिबद्ध है। इसीलिये इस छन्द में गायत्री मन्त्र का गान कर देवताओं ने अमरत्व प्राप्त किया था।

पुरुषार्थसिद्धि :— शास्त्रों में चार प्रकार के पुरुषार्थों की चर्चा है। धर्म अर्थ काम और मोक्ष। गायत्री चतुर्विधि पुरुषार्थ की साधिका है। महर्षि जैमिनि के अनुसार धर्म की परिभाषा है — “चोदनालक्षणो अर्थो धर्मः।” इसका अर्थ है — जो वेद द्वारा प्रतिपादित एवं शुभ फल देने वाला हैं वह धर्म है। अर्थात् याग आदि ही धर्म हैं। याग या यज्ञ कई प्रकार के होते हैं — श्रौत यज्ञ, स्मार्त यज्ञ, कर्मयज्ञ दानयज्ञ। ज्ञानयज्ञ और जपयज्ञ का भी वर्णन प्राप्त होता है। यज्ञों में जपयज्ञ श्रेष्ठतम हैं। “यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि” कहकर भगवान् श्रीकृष्ण ने इस यज्ञ की श्रेष्ठता प्रमाणित की है। गायत्री से बढ़कर कोई मन्त्र नहीं और जप से बढ़कर कोई यज्ञ नहीं। इस प्रकार गायत्री का जप सर्वातिशायी यज्ञ है। यज्ञ ही धर्म हैं अतः गायत्रीजप सब से बड़ा धार्मिक अनुष्ठान है।

दूसरा पुरुषार्थ है — अर्थ। धर्माविरुद्ध अर्थ का उपार्जन शास्त्रविहित है। गायत्री अर्थोपार्जन का सर्वोत्तम साधन है। गायत्री के मूल मन्त्र को यदि अर्थसाधक मन्त्रों से संश्लिष्ट कर दिया जाय तो अर्थोपलब्धि शीघ्र होती है। अथवा स्वयं गायत्री मन्त्र में ही लक्ष्मी आदि के बीजाक्षरों को सन्निविष्ट करने से मनोवाञ्छित अर्थ की प्राप्ति होती है। गायत्री मन्त्र का जप करते हुए रक्तकमल आदि द्रव्यों से हवन करना शीघ्र अर्थलाभ कराता है। चम्पा का फूल, साठी का चावल, बेल का पत्र पुष्प फल आदि, खीर का हवन

अर्थप्राप्ति मे सहायक होता है। राज्य तक प्राप्त करने की शक्ति गायत्री मन्त्र मे निहित है।

सृष्टि के पहले काम की उत्पत्ति हुयी। ‘कामस्तदग्रे समवर्त्तताधि।’ काम सृष्टि के मूल में है। विश्वगर्भा गायत्री जगत् के जनक ब्रह्मा की जननी है। और ब्रह्मा जगत् के जनक है। इस प्रकार काम का मूल स्रोत भी यही देवता है। गायत्री मन्त्र का जप एवं गायत्री देवी की उपासना धर्माविरुद्ध काम की प्राप्ति कराती है। गायत्रीजपपूर्वक त्रिमधु अथवा धान के लावा का हवन कर मनोऽभिलषित वर अथवा कन्या की प्राप्ति का वर्णन देवी भागवत मे मिलता है। इसके अतिरिक्त उत्तम वर अथवा कन्या की प्राप्ति के लिये अन्यान्य अनुष्ठान भी गायत्री के द्वारा सम्पाद्य हैं।

भोग की प्रदात्री गायत्री मोक्ष को भी प्रदान करती है। साधना के क्षेत्र मे कुण्डलिनी की चर्चा आती है। कुण्डलिनी उद्बोधन के अनेक उपाय तत्त्व ग्रन्थों मे वर्णित हैं। गायत्री स्वयं कुण्डलिनी है। मूल गायत्री मन्त्र मे कुछ बीजाक्षरों का निवेश करने पर यह मन्त्र कुण्डलिनी का परम उद्बोधक बन जाता है।^१ कुण्डलिनीउद्बोधन का परमफल षट्चक्रभेदन अथवा उसके ऊपर बिन्दु अर्धचन्द्र रोधिनी नाद नादान्त शक्ति व्यापिनी समना को पार कर उन्मना की स्थिति प्राप्त करना है। उन्मना मे पहुँचने की स्थिति ही शाक्त दृष्टि से मोक्ष है। इस स्थिति मे साधक संवित् शक्ति का साक्षात्कार करता है। गायत्री ही संवित् है। संवित् का साक्षात्कार होने पर सर्वत्र ‘अहम्’ की अनुभूति होने लगती है। इसी को आगमिक शब्दावली में ‘पूर्णअहन्ता’ कहा जाता है। शाक्तदृष्टि से यही मोक्ष हैं जो गायत्री की कृपा से सुलभ हो जाता है।

गायत्री द्वारा चतुर्विधि पुरुषार्थ की उपलब्धि के संक्षिप्त विवेचन से यह जान लेना चाहिये कि गायत्री द्वारा सब कुछ साध्य है। यह असम्भव को भी सम्भव बनाती है। कठिन से कठिन असाध्य रोगों का निवारण, अतिवृष्टि
— इसका प्रयोग हमारे परम भ्रद्वेव गुरुवर श्रीदशिवचैतन्य जी वर्णी ने स्वयं किया है।

अनावृष्टि से त्राण, राजभय शत्रुभय ब्रह्म भूत प्रेत पिशाच राक्षस शाकिनी डाकिनी आदि से रक्षा गायत्री की आराधना से सम्भव है। मृत्युञ्जय होम द्वारा अमरत्व की प्राप्ति गायत्री ही करा सकती है।

श्रीरामचन्द्र द्वारा इन्द्रपुत्र जयन्त के ऊपर ब्रह्मास्त्र के प्रयोग का वर्णन वाल्मीकि रामायण में मिलता है। वशिष्ठ के साथ राजा विश्वामित्र के युद्ध के समय वशिष्ठ द्वारा ब्रह्मदण्ड के प्रयोग की चर्चा पुराणों में आती है। नारायण अस्त्र के प्रयोग का वर्णन महाभारत में आता है। इसी प्रकार ब्रह्मशीर्ष की चर्चा यत्र तत्र मिलती है। ये सभी अस्त्र गायत्रीमन्त्रस्वरूप ही हैं। तत्तत् महापुरुषों ने गायत्री की आराधना और साधना कर तत्तत् अस्त्रों को प्राप्त किया था। संस्कृत के महाकवि श्रीहर्ष ने शब्द के ऊपर बैठकर चिन्तामणि मन्त्र का जप किया था जिसके फलस्वरूप सरस्वती उनके सामने प्रकट हुयी थी। चिन्तामणि मन्त्र का स्वरूप —

“तारं शक्तियुतार्त्तिवाक स्मरपरा चातुर्यचिन्तामणिः” श्लोक में वर्णित है। कतिपय बीजाक्षरों के समावेश के साथ यह भी गायत्री का ही मन्त्र है। उपर्युक्त विषयों से सम्बद्ध पद्य जिनसे मन्त्र के स्वरूप का निर्धारण होता है, हमारे पूज्यपाद गुरुदेव श्री शिवचैतन्य जी वर्णी के पास संगृहीत हैं।

उपासना —

इस संसार में दो प्रकार के उपासक हैं — सगुणोपासक एवं निर्गुणोपासक। उनके उपास्य भी दो प्रकार के हैं — सगुण अथवा सलिङ्ग और निर्गुण अथवा आलिङ्ग। सगुणोपासना भी दो प्रकार की है — केवल अथवा एक की और अनेक अथवा युगल की। राम, कृष्ण, विष्णु, शिव आदि की उपासना युगलोपासना है। इस स्थिति में पुरुष और प्रकृति दोनों भाव रहता है। फिर भी दोनों में विरोध नहीं है। दोनों तुल्यबल हैं। अग्नि और उसकी दाहकता शक्ति के समान एक के बिना दूसरा रह नहीं सकता। गायत्री की उपासना एक अथवा केवल की उपासना है। गायत्री के सगुण और निर्गुण दोनों रूप हैं।

मुल्काविद्वमहेमनीलधवलच्छायैर्मुखैस्त्रीक्षणै —
 युक्तामिन्दुकलनिबद्धमुकुटां तत्त्वार्थवर्णात्मिकाम् ।
 गायत्रीं वरदाभयाङ्कुशकशां शुभ्रं कपालं गदां
 शङ्खं चक्रमथारविन्दयुगलं हस्तैर्वहन्तीं भजे ॥

पद्म गायत्री के सगुणरूप का वर्णन करता है। इसका निर्णय रूप वर्णनातीत है। यह एकलिङ्ग की अवस्था है जो परमपुरुष और परमाप्रकृति दोनों है। शाक्त स्वरूप के उपासक गायत्री की शक्ति अथवा मातृरूप में उपासना करते हैं। इस उपासना में प्रकृति का उल्लासमय रूप प्रकट होकर स्फुरित होता रहता है, जड़ निष्क्रिय अथवा शान्त अवस्था प्रच्छल्न रहती है। इस अवस्था में उपास्य उपासक भेद स्पष्ट रहता है। गायत्री की उपासना या जप जैसे जैसे घनीभूत होता जाता है भेदमय अवस्था धीरे धीरे क्षीण होती जाती है। उस समय जप श्वास प्रश्वास की तरह स्वयं होता रहता है उसे करना नहीं पड़ता। यह भेदाभेद की अवस्था रहती है। इसमें सलिङ्ग उपासना का धीरे धीरे परित्याग होता है और उपासक अलिङ्ग की ओर बढ़ता जाता है। वह कभी भेदमय और कभी अभेदमय अवस्था का अनुभव करता है।

एकलिङ्ग और उभयलिङ्ग दोनों सलिङ्ग हैं। भेदमय भावना से ऊपर उठकर जब उपासक अलिङ्ग की ओर अग्रसर होता है तब गायत्री के परिपूर्ण स्वरूप के अनुभव का प्रारम्भ होता है। इस अवस्था की प्रौढ़ि में भोग और त्याग, गार्हस्थ्य और संन्यास एकार्थबोधक हो जाते हैं। इनके अर्थों का पार्थक्य लुप्त हो जाता है। राजर्षि जनक इस अवस्था के अनुभविता थे।

गायत्री के चार पादों का वर्णन ऊपर किया जा चुका है। शास्त्रों का निर्देश है कि इसका चतुर्थपाद गृहस्थों के लिये नहीं है। किन्तु यदि विशिष्टशक्तिसम्पन्न गुरु गृहस्थ को चतुर्थ पाद का उपदेश दे दे तो चतुर्थ पाद भी गृहस्थ के लिये इष्टकारी होता है। चतुर्थ पाद चतुर्थ आश्रमी अर्थात् संन्यासी के लिये है। इसके जप से निर्वाण या कैवल्य अवस्था प्राप्त होती है। इसके जप मे भी दो स्थिति होती है — एक पूर्व तीन पादों का परिहार

करके और दूसरी तीनो पाद सहित। प्रथम स्थिति में जो प्रकाश दिखाई देता है वह निष्क्रिय निश्चल और शान्त होता है। इसका स्वरूप वेदान्तियों के ब्रह्म जैसा होता है। उस स्थिति में जगत् मिथ्यास्वरूप प्रतीत होता है और उसकी अनुभूति नहीं होती। किन्तु जब जापक चारो पादों का जप करता है तो चतुर्थपाद प्रथम तीनो पादों की अन्तर्भुक्त कर लेता है। उस समय जिस प्रकाश का उदय होता है उसमें जगत् सत्य दिखायी देता है। और सर्वत्र परमशक्ति का आनन्दमय विलास अनुभव में आता है। यही पूर्णता या पूर्ण अहन्ता की उपलब्धि है जिसमें दुःख का लेशमात्र भी नहीं रहता सर्वदा आनन्द ही उच्छिलित होता रहता है।

गायत्री की समीचीन उपासना ब्राह्मण देह से ही विहित है। यद्यपि शास्त्रों ने क्षत्रिय एवं वैश्य को भी गायत्रीउपासना का अधिकार दिया है तथापि ब्राह्मणेतर उपासक गायत्रीउपासना के द्वारा ब्राह्मणत्व प्राप्त करते हैं। यह उनका संस्कारित जन्म होता है, जिसके फलस्वरूप वे सम्यक् उपासना के सम्यक् पात्र बनते हैं। वेद का सिद्धान्त है कि ब्राह्मण का देह गायत्री छन्द से उत्पन्न हुआ है। संसार के कारण इसमें मालिन्य आ जाता है। इसलिये फिर से उसे गायत्री के द्वारा संशोधित करना पड़ता है। यह संशोधित देह ही परमतत्त्व के अनुशीलन के योग्य होता है। जो गायत्री मन्त्र प्रचलित है उसमें सवितृ देव से बुद्धि को सही दिशा में ले जाने के लिये ध्यान करने की बात कही गयी है। सामान्यतः यह तेजोमय सूर्य पिण्ड के अन्दर अधिष्ठित तेज का ध्यान है। जप करते करते जापक जब उत्कृष्टतम अवस्था को प्राप्त करता है अर्थात् जिस अवस्था में यह शरीर शोधित होकर मन्त्रमय हो जाता है और जप स्वयं होने लगता है तब साधक इस ब्रह्माण्डवर्ती सवितृदेव के साक्षात्कार से ऊपर उठने लगता है और धीरे धीरे महासविता की ओर अग्रसर होने लगता है। महासविता की ओर जाने के अन्य मार्ग भी हैं परन्तु गायत्री मन्त्र का जप ऋजुमार्ग एवं राजमार्ग है। पुरुषसूक्त के

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।

तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥

(पु.सू. १८)

मन्त्र द्वारा इसी महासविता का वर्णन किया गया है। दूसरे मार्ग भी अन्त में इसी मार्ग में समाहित हो जाते हैं। आगे चलकर यह स्थिति अभेदमय हो जाती है जहाँ ज्ञाता ज्ञान और ज्ञेय की त्रिपुटी समाप्त हो जाती है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि गायत्री की उपासना सर्वोत्कृष्ट है। इसे अवश्य करना चाहिये। जप इस उपासना का मुख्य अङ्ग है। जप करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि स्थान वातावरण शुद्ध हो। इसीलिये देवालय नदीतीर यज्ञशाला आदि उत्तम स्थान माने गये हैं। गायत्रीमन्त्र के जप के समय प्रत्येक पाद के आदि मे ओंकार का निवेश करना चाहिये। यह गायत्री का छिन्नपाद स्वरूप है। यह ब्रह्महत्या तक के पाप को दूर करता है। अच्छिन्नपादा गायत्री का जप ब्रह्महत्या जैसे पापों से युक्त करता है। जहाँ तक हो सके मन को पवित्र एवं एकाग्र रखना चाहिये। यदि मन मन्त्र को छोड़कर अन्य विषय पर आसक्त हो तो उसे खींच कर मन्त्र पर केन्द्रित करना चाहिये। त्रिकाल सम्म्या द्विज का नित्य कर्म है इसीलिये कम से कम तीन माला गायत्री का जप नित्य करना चाहिये। इसके ऊपर जितना अधिक हो जाय उतना ही उत्तम। माला रुद्राक्ष की होनी चाहिये। आसन ऊन या मृगचर्म का। कुशासन भी विहित है किन्तु इस पर अधिक देर तक नहीं बैठा जा सकता। जप के साथ हवन करना और अधिक श्रेयस्कर है। जिस ओर देवता स्थापित रहते हैं वह दिशा पूर्व मानी जाती है अतः गायत्री की प्रतिमा के सामने जप करना चाहिये। गायत्री के पुरश्चरण का भी विधान है। नर्मदा नदी की एक परिक्रमा, अश्वत्थामा का एक बार दर्शन और गायत्री के एक पुरश्चरण का माहात्य समान है। चौबीस हजार जप को लघु एवं चौबीस लाख जप को वृहद् पुरश्चरण माना गया है। इसके लिये प्रयास करना

चाहिये। इतना अवश्य है कि गायत्रीसाधना में परम धैर्य की आवश्यकता है। जन्म जन्मान्तर की एकनिष्ठ साधना के बाद ही कुछ अनुभव में आता है अतः

‘कोटि जनम लगि लागि हमारी।

वराँ शम्भु न तु रहौं कुँवारी ॥’

पार्वती के उक्त वचन को ध्यान में रखकर घबड़ाना नहीं चाहिये और साधना में निरन्तर प्रवृत्त रहना चाहिये। दिव्य दिव्यातीत लोकों में निवास, साम्राज्य वैराज्य आधिराज्य स्वाराज्य महाराज्य के लाभ की योग्यता त्रिपदा माता ही उत्पन्न कर सकती है। और वही उन्हें देती भी है। परम पद भी गायत्री की कृपा से आयत्त हो सकता है। गायत्री ब्रह्मविद्यास्वरूपा हैं। ब्रह्मविद्या के सूक्ष्मातिसूक्ष्म बहुत से क्रम हैं। गायत्री की पूर्ण प्रसन्नता होने पर वह सब कुछ आयत्त हो सकता है। कोई भी वस्तु शेष नहीं रहती। ब्रह्मविद्या की परावस्था भी गायत्री से ही प्राप्य है। निष्कर्ष यह है कि एकमात्र गायत्री से ही सब कुछ हो सकता है।

गायत्री के एकमात्र उपासक — मेरे संज्ञान में परमपूज्य श्रीदेविचैतन्य वर्णी जी ही एक ऐसे महात्मा है जिन्हें गायत्री की कृपा प्राप्त है। प्रचार प्रसार से अत्यन्त दूर नर्मदा के तट पर स्थित माहेश्वर में आपका निवास स्थान है। आपका सम्पूर्ण जीवन ही गायत्री को समर्पित है। ९० वर्ष की अवस्था में वर्तमान गुरुदेव आज भी परम सक्रिय है। आज से अट्टाइस वर्ष पहले सन् १९६२ में श्री चरण के प्रथम दर्शन का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। तब से अद्यावधि उनकी कृपा मुझ पर निरन्तर बनी हुयी है। यह पुरोवाक् भी उन्हीं की अन्तःप्रेरणा का परिणाम है। यह पुरोवाक् रूपी आत्मविचारप्रकाश तथा ग्रन्थपुष्ट उन्हीं श्रद्धेय गुरुदेव के चरणों में सादर समर्पित है।

श्रीः

गायत्रीउपासनापद्धतिः

श्रीगणेशाय नमः। ३० अस्य श्रीगायत्रीकवचमहामन्त्रस्य
ब्रह्माविष्णुमहेश्वरा ऋषयः ऋग्यजुःसामानि छन्दांसि परब्रह्मविद्यास्वरूपिणी
गायत्री देवता ३० तत् बीजं भर्गः शक्तिः, धियः कीलकं मम
चतुर्विधपुरुषार्थसिद्धये जपे विनियोगः।

न्यासः —

- ३० ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा ऋषयः शिरसि ।
- ३० ऋग्यजुसामाथर्वाणि छन्दांसि मुखे ।
- ३० परब्रह्मस्वरूपिणी गायत्री देवता हृदि ।
- ३० तद् बीजं गुह्ये ।
- ३० भर्गः शक्तिः पादयोः ।
- ३० धियः कीलकं सर्वज्ञे ॥

- ३० तत् सवितुर्ब्रह्मात्मने अद्वृष्टाभ्यां नमः।
- ३० वरेण्यं विष्णवात्मने तर्जनीभ्यां नमः।
- ३० भर्गो देवस्य रुद्रात्मने मध्यमाभ्यां नमः।
- ३० धीमहि मायात्मने अनामिकाभ्यां नमः।
- ३० धियो यो नः कालात्मने कनिष्ठिकाभ्यां नमः।
- ३० प्रचोदयात् सर्वात्मने करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

- ३० तत्सवितुर्ब्रह्मात्मने हृदयाय नमः।
- ३० वरेण्यं विष्णवात्मने शिरसे स्वाहा ।
- ३० भर्गो देवस्य रुद्रात्मने शिखायै वषट्।
- ३० धीमहि मायात्मने कवचाय हुम्।
- ३० धियो यो नः कालात्मने नेत्रत्रयाय वौषट्।
- ३० प्रचोदयात् सर्वात्मने अस्त्राय फट्।

दिग्बन्धः —

ॐ भूर्भुवः स्वरोम् प्राच्यै नमः।

ॐ भूर्भुवः स्वरोम् आग्न्यै नमः।

ॐ भूर्भुवः स्वरोम् दक्षिणायै नमः।

ॐ भूर्भुवः स्वरोम् नैऋत्यै नमः।

ॐ भूर्भुवः स्वरोम् प्रतीच्यै नमः।

ॐ भूर्भुवः स्वरोम् वायव्यै नमः।

ॐ भूर्भुवः स्वरोम् उदीच्यै नमः।

ॐ भूर्भुवः स्वरोम् ऐशान्यै नमः।

ॐ भूर्भुवः स्वरोम् ऊर्ध्वर्यै नमः।

ॐ भूर्भुवः स्वरोम् भूम्यै नमः।

ध्यानम्—

ब्रह्माणी चतुराननाक्षवलया कुम्भस्तनौ सुक्सुवौ

विभ्राणारुणकान्तिरिन्दुवदना ऋग्रूपिणी बालिका।

हंसारोहणकेलिरम्बरमणेर्विम्बाश्रिता भूतिदा

गायत्री हृदि भाविता भवतु नः सम्पत्समृद्ध्यै सदा॥ १॥

रुद्राणी नवयौवना त्रिनयना वैद्याम्ब्रचर्माम्बरा

खट्वज्ञत्रिशिखाक्षसूत्रवलया भूत्यै श्रियै चास्तु नः।

विद्युद्दामजटाकलापविलसद्बालेन्दुमौलिर्मुदा

सावित्री वृषवाहना सिततनुर्घर्येया यजूरूपिणी॥ २॥

ध्येया सा च सरस्वती भगवती पीताम्बरालङ्कृता

श्यामा तन्विजयादिभिः परिलसद्गात्राज्जिता वैष्णवी।

ताक्षर्यस्था मणिनूपुराङ्गदशतग्रैवेयभूषोज्ज्वला

हस्तालम्बितशङ्खचक्रसुगदा भूत्यै श्रियै चास्तु नः॥ ३॥

कवचम् —

३० गायत्री पूर्वतः पातु सावित्री पातु दक्षिणे ॥
 ब्रह्मविद्या च मे पश्चादुत्तरे मां सरस्वती ॥ १ ॥
 पावकी मे दिशं रक्षेत् पावकोज्ज्वलरूपिणी ॥
 यातुधानी दिशं रक्षेत् यातुधानी भयङ्करी ॥ २ ॥
 पावमानी दिशं रक्षेत् पवमानविलासिनी ॥
 दिशं रौद्री तु मे पातु रुद्राणी रुद्ररूपिणी ॥ ३ ॥
 ऊर्ध्वं ब्रह्मात्मिका पातु अधस्ताद् वैष्णवी तथा ॥
 एवं दश दिशो रक्षेत् सर्वाङ्गे भुवनेश्वरी ॥ ४ ॥
 ब्रह्मास्त्रस्मरणादेव वाचां सिद्धिः प्रजायते ॥
 ब्रह्मदण्डश्च मे पातु शत्रूणां वधकारकः ॥ ५ ॥
 सप्त व्याहृतयः पान्तु सर्वदा विन्दुसंयुताः ॥
 वेदमाता च मां पातु सरहस्या सदेवता ॥ ६ ॥
 तत् पदं पातु मे पादौ जंघे मे सवितुः पदम् ॥
 वरेण्यं कटिदेशं तु नाभिं भर्गस्तथैव च ॥ ७ ॥
 देवस्य मे तु हृदयं धीमहीति गलं तथा ॥
 धियो मे पातु जिह्वायां यः पदं पातु लोचने ॥ ८ ॥
 ललाटे नः पदं पातु मूर्द्धनां मे प्रचोदयात् ॥
 तद्वर्णं पातु मूर्द्धनां सर्वर्णं पातु भालकम् ॥ ९ ॥
 चक्षुषी मे विकारस्तु श्रोत्रे रक्षेत् तुकारकः ॥
 नासापुटौ वकारो मे रेकारस्तु कपोलयोः ॥ १० ॥
 णिकारस्तूत्तरोष्ठं च यकारस्त्वधरोष्ठके ॥
 आस्यमध्ये भकारस्तुर्गोकारश्चिबुकं तथा ॥ ११ ॥
 देकारः कण्ठदेशो तु वकारः स्कन्धदेशयोः ॥
 स्यकारो दक्षिणं हस्तं धीकारो वामहस्तके ॥ १२ ॥
 मकारो हृदयं रक्षेत् हिकारो जठरं तथा ॥
 धिकारो नाभिदेशं तु योकारस्तु कटिद्वयम् ॥ १३ ॥

गुह्यं रक्षतु योकारः ऊरु में नः पदाक्षरम् ॥
 प्रकारो जानुनी रक्षेत् चोकारो जड्घदेशयोः ॥ १४ ॥
 दकारो गुल्फदेशं तु यात्कारः पादयुग्मकम् ॥
 जातवेदेति गायत्री त्र्यम्बकेति दशाक्षरा ॥ १५ ॥
 सर्वतः सर्वदा पातु आपोज्योतीति षोडशी ॥
 इदं तु कवचं दिव्यं वाधाशतविनाशकम् ॥ १६ ॥
 चतुषष्ठिकलाविद्यासकलैश्वर्यसिद्धिदम् ॥
 जपारम्भे तु हृदयं जपान्ते कवचं पठेत् ॥ १७ ॥
 स्त्रीगोब्राह्मणमित्रादिद्रोहाद्यखिलपातकैः ॥
 मुच्यते सर्वपापेभ्यः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ १८ ॥
 शतमावर्त्तयेद् यस्तु मुच्यते व्याधिबन्धनात् ॥
 आवर्त्तनसहस्रेण लभते वाञ्छितं फलम् ॥ १९ ॥
 पुष्पाञ्जलिं च गायत्र्या मूलेनैव पठेत् सकृत् ॥
 शतसाहस्रवर्षाणां पूजायाः फलमाप्नुयात् ॥ २० ॥
 भूर्जपत्रे लिखित्वैतत् वर्णस्थं धारयेद् यदि ॥
 शिखायां दक्षिणे बाहौ कण्ठे वा धारयेद् बुधः ॥ २१ ॥
 त्रैलोक्यं क्षोभयेत् सर्वं त्रैलोक्यं दहति क्षणात् ॥
 पुत्रवान् धनवान् श्रीमान् नानाविद्यानिधिर्भवेत् ॥ २२ ॥
 ब्रह्मास्त्रादीनि सर्वाणि तदङ्गस्पर्शमात्रतः ॥
 भवन्ति तस्य तुल्यानि किमन्यत् कथयामि ते ॥ २३ ॥
 न देयं परशिष्येभ्यो दाभिकेभ्यो विशेषतः ॥
 शिष्येभ्यो भक्तियुक्तेभ्योऽन्यथा मृत्युमवाप्नुयात् ॥ २४ ॥

इति श्रीअगस्त्यसंहितायां ब्रह्मनारायणसंवादे
 प्रकृतिखण्डे गायत्रीकवचं सम्पूर्णम् ॥



अथ गायत्रीपञ्जरम्

भगवन्तं देवदेवं ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् ॥
 विधातारं विश्वसृजं पद्मयोनिं प्रजापतिम् ॥ १ ॥
 शुद्धस्फटिकसंकाशो महेन्द्रसदृशोपमः ॥
 बद्धपिङ्गजटाजूटस्तडित्कनककुण्डलः ॥ २ ॥
 शरच्चन्द्रभवदनः शरदिन्दीवरेक्षणः ॥
 हिरण्यमयो विरूपेश उपवीताजिनावृतः ॥ ३ ॥
 मौक्तिकाभाक्षवल्यस्तन्त्रीलयसमन्वितः ॥
 कर्पूरोदधूलिततनुः स्नष्टुर्नयनवर्द्धनः ॥ ४ ॥
 विनयेनोपसङ्गम्य शिरसा प्रणिपत्य च ॥
 नारदः परिप्रच्छ देवर्षिगणमध्यमम् ॥ ५ ॥

नारद उवाच —

भगवन् देवदेवेश सर्वज्ञानगुणाकर ॥
 श्रोतुमिच्छामि यत्लेन भोगमोक्षैकसाधनम् ॥ ६ ॥
 ऐश्वर्यादिसमग्रत्वात् फलदं द्वन्द्ववर्जितम् ॥
 ब्रह्महत्यादिपापधं कामाद्यरिभयापहम् ॥ ७ ॥
 यदेकं निष्फलं सूक्ष्मं निरञ्जनमनामयम् ॥
 यते प्रियतमं लोके तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ ८ ॥

ब्रह्मोवाच —

श्रृणु नारद वक्ष्यामि ब्रह्ममूलं सनातनम् ।
 सृष्ट्यादौ मन्मुखे क्षिप्तं देवदेवेन विष्णुना ॥ ९ ॥
 प्रणवं बीजमित्याहुरुत्पत्तिस्थितिहेतुकम् ॥
 पुरा मया च कथितं कश्यपायातिधीमते ॥ १० ॥
 सवित्रीपञ्जरं नाम रहस्यं निगमत्रये ॥
 ऋष्यादिकं च दिग्वर्णसाङ्घावरणकं क्रमात् ॥ ११ ॥

वाहनायुधमन्त्रास्त्रमूर्तिध्यानपुरस्सरम् ।
स्तोत्रं तेऽहं प्रवक्ष्यामि त्वयि स्नेहाच्च नारद ॥ १२ ॥
ब्रह्मनिष्ठाय देयं स्यान् देयं यस्य कस्यचित् ॥
आचम्य नियतः पश्चादात्मध्यानपुरस्सरम् ॥ १३ ॥
ॐ ह्रीमित्यादौ विचिन्त्य महाहेमाग्रसंस्थिताम् ॥
धर्मकन्दगतज्ञाननालैश्वर्यसमन्विताम् ॥ १४ ॥
वैराग्यकर्णिकासीनामोइकारग्रहमध्यगाम् ॥
ब्रह्मवेदिसमायुक्तां चैतन्यपरमध्यगाम् ॥ १५ ॥
तत्त्वहंसपदाकीर्णशब्दपीठसमास्थिताम् ॥
निर्विकल्पतरोमूले नित्यसिंहासने स्थिताम् ॥ १६ ॥
नादविन्दुकलातीतां नूपुरैरुपशोभिताम् ॥
नित्यानित्यामृतत्वादिप्राकारैरभिसंवृताम् ॥ १७ ॥
निष्कलार्गलसम्भिनां गुणद्वारकपाटिकाम् ॥
चतुर्वर्गफलोपेतां नित्यकर्मवनैर्वृताम् ॥ १८ ॥
सान्द्रानन्दसुधासिन्धोर्निंगमद्वीपमध्यगाम् ॥
ध्यानधारणयोगादितृणगुल्मलतावृताम् ॥ १९ ॥
सदसच्चित्स्वरूपाख्यमृगपक्षिसमाकुलाम् ॥
विद्याऽविद्याविचारत्वाल्लोकालोकाचलावृताम् ॥ २० ॥
अविकारं समाशिलष्य निजाध्यासगणावृताम् ॥
पञ्चीकरणापञ्चोत्थभूतत्त्वैर्निषेविताम् ॥ २१ ॥
वेदोपनिषदार्थाख्यदेवर्षिगणमध्यमाम् ॥
इतिहासग्रहणैः सतारैरभिवन्दिताम् ॥ २२ ॥
सिद्धाप्सरोभिर्यक्षैश्च सेवितां नरकिन्नरैः ॥
नानाशास्त्रपुराणाख्यपुरुषैः कल्पचारणैः ॥ २३ ॥
कृतगानविनोदादिकथालापनतत्पराम् ॥
तदित्यं वाङ्मनोऽगम्यतेजोरूपधरां शिवाम् ॥ २४ ॥

जगतः प्रसवित्रीं तां सवितुः सृष्टिकारिणीम् ॥
वरेण्यामाश्रयणीयां पुरुषार्थफलप्रदाम् ॥ २५ ॥
अविद्याऽवरणामुक्तां तेजो यद्भर्गसंज्ञिकाम् ॥
देवस्य सच्चिदानन्दपरब्रह्मरसात्मिकाम् ॥ २६ ॥
धीमह्याहं स वैचिन्त्याद्वैतब्रह्मसम्मिताम् ॥
धियो यो नः स सविता प्रचोदयात्तामुपासिताम् ॥ २७ ॥
परोऽसौ सविता साक्षात् देवो निर्हरणाय च ।
रजसेऽसाव इत्याभ्यां ऊँकारोभवदि स्वयम् ॥ २८ ॥
आपो ज्योतिरिति द्वाभ्यां यां च भौतिकसंज्ञिकाम् ।
रसोऽमृतं ब्रह्मपदैः तां नित्यां व्यापिनीं पराम् ॥ २९ ॥
भूभुर्वः सुवरित्येतैर्निर्गमित्वप्रकाशिताम् ॥
महर्जनः तपः सत्यलोकानामुपकल्पिताम् ॥ ३० ॥
तादृश्याश्च विराङ्गरूपं रहस्यं ते वदाम्यहम् ॥

ब्रह्मोवाच —

व्योमकेशालकासक्तकिरीटेन विराजिताम् ॥ ३१ ॥
मेघभूकुटिलक्रान्तां विथिविष्णुशिवाननाम् ॥
गुरुभार्गवकर्णन्तां सोमसूर्याग्निलोचनाम् ॥ ३२ ॥
इडापिङ्गलसूक्ष्माख्यवायुनासापुटान्विताम् ॥
सन्ध्याद्विजोष्ठपुटिलसद्वागुपजिह्विकाम् ॥ ३३ ॥
सन्ध्यासौर्यमणिग्रीवां मरुद्बाहुसमन्विताम् ॥
आकाशोदरविस्सस्तस्तनाभ्यन्तरदेशकाम् ॥ ३४ ॥
प्राजापत्याख्यजघनां कटीन्द्राणीति संशिकाम् ॥
उरुमलयमेरुभ्यां शोभमानसरिद्वयाम् ॥ ३५ ॥
सुजानुजहुकुशिकवैशवदेवाख्यसंज्ञिकाम् ॥
पादाङ्गिनखरोमाख्यभूनखद्वयलञ्छिताम् ॥ ३६ ॥
अहमित्यक्षरादेव भूतावयवसंज्ञिकाम् ॥
अयनद्वयजङ्घाद्यां खुराख्यपितृसंज्ञिकाम् ॥ ३७ ॥

तिथिमासर्तुवषादिसक्रुनिमिषात्मिकाम् ॥
अहोरात्रार्द्धमासाख्यसन्ध्यावाहनसंवृताम् ॥ ३८ ॥
ज्वलत्कालानलप्रख्यां तडित्कोटिसमप्रभाम् ॥
कोटिसूर्यप्रतीकाशां शशिकोटिसुशीतलाम् ॥ ३९ ॥
सुधामण्डलमध्यस्थां सान्द्रानन्दामृतात्मिकाम् ॥
वागतीतां मनोगम्यां वरदां वेदमातरम् ॥ ४० ॥
चराचरमयीं नित्यां ब्रह्माक्षरसमन्विताम् ॥
ध्यात्वा स्वात्मविभेदेन ब्रह्मपञ्जरमारभेत ॥ ४१ ॥
पञ्जरस्य ऋषिः सोऽहं छन्दो विकृतिरुच्यते ॥
तत्तत्वं धीमहि क्षेत्रं धियो क्रंयात् परं पदम् ॥ ४३ ॥
मन्त्र आपोज्योतिरिति योनिर्हसस्तु भेदकः ॥
नृषद्वर्णामृतं ध्यानं कवचं व्यापकं मुने ॥ ४४ ॥
धर्मार्थकाममोक्षार्थे विनियोग इतीरितः ॥
षडङ्गदेवतामन्त्ररङ्गन्यासं समाचरेत् ॥ ४५ ॥
त्रिधा मूलेन मन्त्रेण व्यापयेत् सुसमाहितः ॥
पूर्वोक्तदेवतां ध्यायेत् साकारगुणसंस्थिताम् ॥ ४६ ॥
पञ्चवक्त्रां दशभुजां त्रिपञ्चनयनैर्युताम् ॥
मुक्ताविद्वमसौवर्णसितनीलशुभाननाम् ॥ ४७ ॥
वाणीपरारमामायाकामाख्यवदनैर्वृताम् ॥
षडङ्गदेवतामन्त्ररूपाद्यवयवात्मिका ॥ ४८ ॥
मृगेन्द्रवृषपक्षीन्द्रमृगहंसासनस्थिताम् ॥
अर्द्धेन्दुबद्धमुकुटकिरीटमणिकुण्डलाम् ॥ ४९ ॥
रत्नाटङ्गमाङ्गल्यहारग्रैवेयनूपुराम् ॥
अहूलीयककेयूरकटकाद्यरलङ्कृताम् ॥ ५० ॥
दिव्यस्त्रग्रवस्त्रसञ्चनां रविमण्डलमध्यगाम् ॥
वराभयाब्जयुगलां शाइखचक्रगदाइकुशाम् ॥ ५१ ॥

शूलं कपालं सगुणं वहन्तीमक्षरात्मिकाम् ॥
गायत्रीं वरदां देवीं सावित्रीं वेदमातरम् ॥ ५२ ॥
आदित्यपथयातृणां परब्रह्मस्वरूपिणीम् ॥
विशिष्टमन्त्रजननीं स्मरेद् विद्यां सरस्वतीम् ॥ ५३ ॥
त्रिपदा ऋग्वर्या पूर्वमुखी ब्रह्मास्त्रसंज्ञिका ॥
चतुर्विंशतितत्त्वाद्या पातु प्राचीं दिशं मम ॥ ५४ ॥
चतुष्पदा यजुर्ब्रह्मदण्डाद्या दक्षिणानना ॥
षट्त्रिंशत् तत्त्वयुक्ता सा पातु मां दक्षिणां दिशम् ॥ ५५ ॥
प्रत्यइमुखी पञ्चपदी पञ्चाशत् तत्त्वरूपिणी ॥
पातु प्रतीचीमनिशं सामब्रह्मशिरोऽङ्गिकता ॥ ५६ ॥
सौम्याख्या ब्रह्मतुर्याख्यसाथर्वाङ्गिरसात्मिका ॥
उदीचीं षट्पदा पातु चतुषष्ठिकलात्मिका ॥ ५७ ॥
पञ्चाशद् वर्णरचिता नवपादा शताक्षरा ॥
व्योमाख्या पातु मे चोर्ध्वदिशां वेदान्तसंस्थिता ॥ ५८ ॥
विद्युनिभा ब्रह्मसन्ध्या मृगारूढा चतुर्भुजा ॥
चापेषु चर्मासिधरा पातु मे पावकीं दिशम् ॥ ५९ ॥
ब्राह्मी कुमारी गायत्री रक्ताङ्गी हंसवाहना ॥
बिभ्रत् कमण्डलुं देवी पातु मे नैऋतीं दिशम् ॥ ६० ॥
शुक्लवर्णा च सावित्री युवती वृषवाहना ॥
कपालमालाक्षधरा पातु मे वायवीं दिशम् ॥ ६१ ॥
श्यामा सरस्वती वृद्धा वैष्णवी गरुडासना ॥
शाइखार्यब्जाभयकरा पातु शैवीं दिशं मम ॥ ६२ ॥
चतुर्भुजा वेदमाता गौराङ्गी सिंहवाहना ॥
वराभयाब्जयुग्लभुजा पात्वधरां दिशम् ॥ ६३ ॥
तत्तत्पाशर्वे स्थिताः स्वस्ववाहनायुधभूषणाः ॥
सर्वदिक्षु स्थिताः पान्तु ग्रहशक्त्यज्ञदेवताः ॥ ६४ ॥

मन्त्राधिदेवतारूपा मुद्राधिष्ठानदेवता: ॥
व्यापकत्वेन पान्त्वस्मान् आपादतलमस्तकम् ॥ ६५ ॥
तत्पदं मे शिरः पातु भालं मे सवितुः पदम् ॥
वरेण्यं मे दृशौ पातु श्रुती भर्गः सदा मम ॥ ६६ ॥
घ्राणं देवस्य मे पातु पातु धीमहि मे मुखम् ॥
जिह्वां मम धियः पातु कण्ठं मे पातु यः पदम् ॥ ६७ ॥
नः पदं पातु मे स्कन्धौ भुजौ पातु प्रचोदयात् ॥
करौ तु मे परः पातु वक्षो मे रजसे सदा ॥ ६८ ॥
असौ मे हृदयं पातु मम मध्यं च धावतु ॥
औमानाभिं सदा पातु कटिं प्रापातु मे सदा ॥ ६९ ॥
ओमापः सविथनी पातु गुह्यं ज्योतिः सदा मम ॥
ऊरु मम रजः पातु जानुनी अमृतं मम ॥ ७० ॥
जङ्घे ब्रह्मपदे पातु गुल्फौ भूः पातु मे सदा ॥
पादौ मम भुवः पातु सुवः पात्वखिलं वपुः ॥ ७१ ॥
रोमाणि मे महः पातु रोमकूपांस्तु मे जनः ॥
प्राणाश्च धातुस्तत्त्वानि तदीशः पातु मे तमः ॥ ७२ ॥
सत्त्वं पातु महामाया हंसो बुद्धिं च पातु मे ॥
शुचिष्ट पातु मे विद्यां धनकोशे वसुः सदा ॥ ७३ ॥
या त्वन्तरिक्षं सन्तानं होता मे पातु धर्मजम् ॥
अङ्गवेदि दिशत् पातु अतिथिः पातु मे गृहम् ॥ ७४ ॥
धर्म दुरोणसत् पातु नृष्टत् पातु च मे सुतान् ॥
व्योमष्ट पातु मे बन्धून् भ्रातृनब्जाश्च पातु मे ॥ ७५ ॥
गोजाश्च मे पशून् पातु ऋतजाः पातु मे भुवः ॥
अद्रिजाः पातु मे द्रव्यं सर्वस्वं पातु मे ऋतम् ॥ ७६ ॥
वह्मारुतसोमार्काः पुरुषार्थं सदा मम ॥
अनुक्तमपि यत्स्थानं शारीरान्तर्बहिः स्थितम् ॥ ७७ ॥
तत् सर्वं पातु मे तत्त्वं हंसः सोऽहमहर्निशम् ॥

इदं ते कथितं सम्यगस्माभिर्ब्रह्मपञ्जरम् ॥ ७८ ॥
सन्ध्ययोः प्रत्यहं भक्त्या जपकाले विशेषतः ॥
धारयेद् द्विजवर्यो यः श्रावयेद् वा समाहितः ॥ ७९ ॥
स विष्णुः स शिवः सोऽहं स सप्ताट् स विराट् सराट् ॥
शताक्षरात्मकं देव्या नामाष्टाविशतिं शतम् ॥ ८० ॥
श्रृणु वक्ष्यामि तत्सर्वं इति गुह्यं सनातनम् ॥
भूतिदा भुवना वाणी वसुधा सुमना मही ॥ ८१ ॥
हरिणी जननी नन्दा सविसर्गा तपस्विनी ॥
पयस्विनी सती त्यागा बैन्दवी तन्मयी समा ॥ ८२ ॥
विश्वा तुर्या परा देव्या निःस्वनी यमुना भवा ॥
गोदा देवी वरिष्ठा च शातानीतिर्मतिर्हिमा ॥ ८३ ॥
धिषणा योगिनी योक्त्री नदी प्रज्ञा तु चोदिनी ॥
दया च यामिनी पद्मा रोहिणी रमणी जटी ॥ ८४ ॥
सेनामुखी साममयी बकुला दोषवर्जिता ॥
माया प्राज्ञी मरा दोग्ध्री मानिनी पोषणी क्रिया ॥ ८५ ॥
ज्योत्स्ना तीर्थमयी रम्या सोमा मृत्युञ्जया तपा ॥
ब्राह्मी हैमी भूर्भुजङ्गी वशिनी सुन्दरी वनी ॥ ८६ ॥
अङ्कारी हंसिनी सर्वा वसुधा षड्गुणावती ॥
वन्द्या सुधा रमा तन्वी रिपुधी क्षणिका सती ॥ ८७ ॥
हैम्नी तारा वेगवती जितनिद्रा षडानना ॥
अमरा तीर्थदा तीर्था दुर्दर्षा रोगहारिणी ॥ ८८ ॥
वाणी सदा नृशंसघ्नी षट्पदा वज्रिणीरणी ॥
अनन्ता विमला पूर्णा सल्लीला चाम्बिकाऽव्यया ॥ ८९ ॥
योगिनी मदना सत्या अद्रिजा बलदा जया ॥
गोमती जाह्नवी ऋग्वी तटिनी जातवेदसी ॥ ९० ॥
अचिरा दृष्टिदा जाया हुता तन्त्रा हतात्मिका ॥
सर्वकामदुधा सोमोद्भवाहङ्कारवर्जिता ॥ ९१ ॥

द्विपदा च चतुष्पादा त्रिपदा या च षट्पदा ॥
अष्टापदी नवपदी सा सहस्राक्षरात्मिका ॥ ९२ ॥
य इदं परमं ब्रह्मसावित्रीमन्त्रपञ्जरम् ॥
नामाष्टविंशतिशतं श्रृणुयाच्छ्रावयेत् पठेत् ॥ ९३ ॥
मृतानाममृतत्वाय भीतानामभयाय च ॥
मोक्षाय च मुमुक्षूणां श्रीकामानां श्रियै सदा ॥ ९४ ॥
विजयाय युयुत्सूनां व्याधितानामरोगकृत् ॥
वशयाय वश्यकामानां विद्यायै वेदवाच्छताम् ॥ ९५ ॥
द्रविणाय दरिद्राणां पापिनां पापशान्तये ॥
वादिनां वादविजयाय कवीनां कविताप्रदम् ॥ ९६ ॥
अन्नाय क्षुधितानां च स्वर्गाय स्वर्गमिच्छताम् ॥
पशुभ्यः पशुकामानां पुत्रेभ्यः पुत्रकाङ्गिक्षणाम् ॥ ९७ ॥
क्लेशिनां क्लेशशान्ताय नृणां शत्रुक्षयाय च ॥
राजवश्याय जप्तव्यं पञ्जरं नृपसेविनाम् ॥ ९८ ॥
भक्त्यर्थं विष्णुभक्तानां विष्णोः सर्वान्तरात्मनः ॥
विनायकविसृष्टानां शान्तये भवति ध्रुवम् ॥ ९९ ॥
जप्यते सर्वसिद्ध्यर्थं मोक्षाय च पराय च ॥
उद्यन्तं चण्डकिरणमुपस्थाय कृताञ्जलिः ॥ १०० ॥
तुलसीकानने तिष्ठन्नासीनो वा जपेदिदम् ॥
सर्वान् कामानवाप्नोति तथैव शिवसन्निधौ ॥ १०१ ॥
मम प्रीतिकरं दिव्यं विष्णुभक्तिविवर्धनम् ॥
ज्वरात्तानां कुशाग्रेण मार्जयेत् कुष्ठिनां तु वा ॥ १०२ ॥
अङ्गभङ्गं यथालङ्गं कवचेन च साधकः ॥
मण्डलेन विशुध्येत् सर्वरोगैर्न संशयः ॥ १०३ ॥
मृतप्रजा च या नारी जन्मवन्ध्या तथैव च ॥
कन्यादिवन्ध्या या नारी तासामङ्गं प्रमार्जयेत् ॥ १०४ ॥

पुत्रानरोगिणस्तास्ता लभन्ते दीर्घजीविनः ॥
तास्ताः संवत्सरादर्वाग् गर्भं तु दधते पुनः ॥ १०५ ॥
पतिविद्वेषिणी नारी अङ्गं तस्याः प्रमार्जयेत् ॥
तमेव भजते सा स्त्री पतिं कामवशं गता ॥ १०६ ॥
अश्वत्थे राजवश्यार्थी जले मग्नः स्वरूपभाक् ॥
पलाशमूले विद्यार्थी तेजसाभिमुखो रवेः ॥ १०७ ॥
कन्यार्थी चण्डकागेहे गेहे शत्रुक्षयाय च ॥
श्रीकामो विष्णुगेहे च उद्याने श्रीवशं भवेत् ॥ १०८ ॥
आरोग्यार्थी स्वगेहे च मोक्षार्थी शैलमस्तके ॥
किमत्र बहुनोक्तेन शृणु नारद तत्त्वतः ॥ १०९ ॥
यं यं काममभिध्यायेत् तं तमाप्नोत्यसंशयम् ॥

इति श्रीमद्वशिष्ठसंहितायां चतुर्विंशति साहस्यां
वशिष्ठपाराशरसंवादे सावित्रीपञ्जरं

समाप्तम्

ঝঝঝঝ

अथ गायत्र्यष्टसहस्रकम्

नारद उवाच —

भगवन् देवदेवेश सर्वशास्त्रविशारद ॥
श्रुतिस्मृतिपुराणानां रहस्यं त्वन्मुखाच्छ्रुतम् ॥ १ ॥
सर्वपापहरं देव केन स्याद् ब्रह्मवर्चसम् ॥
केन वा ब्रह्मविज्ञानं केन वा मोक्षसाधनम् ॥ २ ॥
ब्राह्मणानां गतिः केन केन वा मृत्युनाशनम् ॥
ऐहिकामुष्मिकफलं केन वा पद्मसम्भव ॥ ३ ॥
वक्तुर्मर्हस्यशेषेण सर्वं विषयमादितः ॥

ब्रह्मोवाच —

साधु साधु महाभाग सम्यक् पृष्ठं त्वयानघ ॥ ४ ॥
श्रृणु वक्ष्यामि यत्नेन गायत्र्यष्टसहस्रकम् ॥
सृष्ट्यादौ विष्णुना पूर्वं यदुक्तं तद् ब्रवीमि ते ॥ ५ ॥
अष्टोत्तरसहस्रस्य अहमेव ऋषिः स्मृतः ।
छन्दोऽनुष्टुप् तथा देवी गायत्री देवता मता ॥ ६ ॥
हलो बीजानि तस्यैव स्वराः
(अतः परं न लभ्यते) अपूर्णम् ।

ঝীঝীঝী

अथ गायत्रीपञ्चाङ्गम्

भैरव उवाच —

श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि गायत्रीतत्त्वमुत्तमम्।
स्तोमं मन्त्रमयं नाम सर्वतन्त्रेषु गोपितम्॥ १॥
अङ्गपञ्चाङ्गमीशानि महापातकनाशनम्।
पुण्यप्रदं वेदसारं सर्वतत्त्वोत्तमोत्तमम्॥ २॥
परमार्थाभिख्यातस्य स्तोत्रस्यास्ति ऋषिः शिवः॥
त्रिष्टुप् छन्दो महादेवि त्रिपदी देवता स्मृता॥ ३॥
तारं बीजं शिरः शक्तिः स्वर्गं कीलकमीशवरि॥
धर्मार्थकाममोक्षार्थे विनियोग इति स्मृतः॥ ४॥

ध्यानम्—

चतुर्भुजामर्कसहस्रकोटिभां
त्रिलोचनां हारकिरीटशोभिताम्॥
कपालखट्वाङ्गधरां महोज्ज्वलां
(श्रुती)॑ श्वरीं पञ्चमुखीं भजाम्यहम्॥ १॥
विविधमणिमयूरवैः स्फीतकेयूरहारां
प्रवरकनककाञ्चीकिङ्गणीकिङ्गणाद्याम्॥
सकलभुवनरक्षासृष्टिसंहारकर्त्रीं
निगमपरमविद्यामाश्रये वेदधात्रीम्॥ २॥
प्रणवं मनुराजमौलिरनोपरि देवेशवरि वेदसागरोत्थाम्।
प्रजये हृदये दयः समुद्रः सततं ब्रह्मविदीश्वरो भवेद् य एकः॥ ३॥
शंका भवेच्चैव विहाय शंकां
कङ्गालमालाभरणो निशीथे॥
कृशानुभानुप्रभया समानो
विमानचारी स भवेत् समानः॥ ४॥

नृबीजमन्तःशिवशक्तिरूपं

विभोर्जपेद् यः त्रिपदीरहस्यम् ॥

स कामुकः कामकलाविदग्धो

भवेत् रम्भाङ्गविलासभागी ॥ ५ ॥

त्रिकूटबीजं तव मन्त्रमध्ये

जपेद् भवानि स्मरतप्तचेता ॥

स मीनकामांश्च निदाघमेधो

भवेद् भुवो भूपबुधो जनेन्द्रः ॥ ६ ॥

स्मरञ्जपेद् यः परमार्थपथ्यां

निर्वाणपथ्यां तव पञ्चवक्त्रे ॥

समस्तलोकाधिपतिः पुरेऽसौ

भवेत् परानुग्रहभाजनं सः ॥ ७ ॥

परां जघेद्यः परमार्थतथ्यां

निर्वाणरथ्यां तव पञ्चवक्त्रे ॥

सुलोचनांलोचनवीक्षणोरु—

प्रभावपीयूषरसाकुलात्मा ॥ ८ ॥

लक्ष्मीं जपेद्यः परवर्गभीतः

श्मशानभूमौ शिववेषधारी ॥

तस्यै(—व)॑वश्या कमलाकरस्था

या विष्णुपत्नी कमलाकरस्था ॥ ९ ॥

वाणीं यदा कण्ठजले जपेद्यो

दशायुतं दुर्दशायाभिभूतः ॥

स वैरिवर्गं समरे निहत्य

भवेद् भवानीतनयो दिवेन्द्रः ॥ १० ॥

भीमां जपेद् यो वरतान्तकाले

नितान्तमम्भोजदलासनस्थः ॥

स भीमरूपोऽरिकुलं विहन्या—

दन्ते लभेत कामपदं त्रिपाद्याः ॥ ११ ॥

मन्त्रं जपेद् यः शुचिर्चर्चनायां

चतुर्भुजे हव्यभुजः समक्षम् ॥

स गाणपत्यं प्रतिपद्य देव्या—

स्तथा भवेद् विश्वनृपाधिनाथः ॥ १२ ॥

गायत्रीत्यभिधाक्षरत्रयमिदं वेदार्थतत्त्वं परं

यो ध्यायेद्धृदयारविन्दकुहरे प्रातर्निशीथेऽथवा ॥

चैनाचारविचारमार्गनिपुणो वेदान्तसारोद्धृतं

प्रोद्भूतागमतत्त्ववित्तु त्रिपदीधाम स्वयं यास्यति ॥ १३ ॥

रमा (सुयोगी)^१ गिरिग्ह्रान्ते

जपेद् गिरीशाङ्कपतेः समीपे ॥

स योगिगम्यो गुरुर्गर्वहारी

गिरां भवेदिन्द्रसमुच्चिताङ्गिः ॥ १४ ॥

मायां जपेद्यः स्मरयुक्तचेता

जटाकिरीटेन्दुकले तवाग्रे ॥

स वैष्णवेन्दौ सुरनाथमौलिः

स्फुरन्मणिज्योतिविराजिताङ्गिः ॥ १५ ॥

मा बीजमिन्दुस्फुरतोर्ध्वबीजं

जपेन्निशीथे शीषसनस्थः ॥

यो वीरमातैकपरः स सद्यो

भवेद् धरायां नृपसार्वभौमः ॥ १६ ॥

मायायुगं यः प्रजपेद् रतादौ

(नारी—) मुखासक्तमुखो निशीथे ॥

स लोकपालार्चितपादपद्मो

भवेद् भवान्ते भुवनाधिनाथः ॥ १७ ॥

वाणीं जपेद्यो जडभावयुक्तो
वेदान्ततत्त्वैकपरो भवेच्च ॥

तस्यास्यपदे वसतिं विधाय
ननर्ति वाणीं विदुषां सभायाम् ॥ १८ ॥

यो वायुपूज्यां सुरतावसाने
जपेनिशीथे शशिखण्डचूडे ॥

स वायुपूज्यो बलवान् प्रयाति
तद्वाम सत्यं त्रिदिवेन्द्रतुल्यः ॥ १९ ॥

कान्तार्णमन्तर्जपते स्मरन्ते
यो वेदमातर्दिवसावसाने ॥

वश्यो वशी तस्य पदारविन्दे
सुश्रूषमाणो भवता भवन्ति ॥ २० ॥

मन्त्रान्तरस्थं ठद्वयं जपेद्यस्
तेजोरूपं साधकसाधकेशि ॥

तस्याप्यास्ये भारती तस्य हस्ते
लक्ष्मीः कुर्याद् वास आकल्पकालम् ॥ २१ ॥

भूगेहवृत्तस्यषोडशार
नानास्त्रदिक्कोणयुगानि विन्दौ ॥

निषेदुषीं शीधुरसाकुलाक्षीं
त्र्यक्षीं त्रिवर्णा त्रिपदां भजामि ॥ २२ ॥

देवि त्रैलोक्यमातर्लगुडवरकरे पुष्पमालावतंसे
नानारत्नप्रभाद्ये त्रिनयनविलसत्सूर्यचन्द्रगिनेत्रे ॥

पीठे वै पञ्चवक्त्रे वलयमणिविभाभासुरे नूपुराद्ये
श्रीमन्नीलोत्पलाभे त्रिभुवनहृदये वेदमातः प्रसीद ॥ २३ ॥

इति स्तोत्रं पुण्यं परममनुमयतत्त्वसहितं
पठेद् वा गायत्रीं निशि कुजदिने वापि सततम् ॥

पठेद् वाऽसौ दान्तः (सकलमपि)^३ शास्त्रं गमयति
 लभेल्लक्ष्मीं प्रान्ते परमपदवीमातृकामपि॥ २४॥
 एतद् देवीपञ्चाङ्गं सर्वं सारमनुत्तमम्॥
 गायत्र्यास्तत्त्वमीशानि चतुर्वेदरहस्यकम्॥ २६॥
 सर्वसारमयं सिद्धिप्रदं भोगापवर्गदम्॥
 सर्वतन्त्रेषु गुप्तं महादिव्यं महापदम्॥ २७॥
 न दातव्यमभक्ताय कुचैलाय दुरात्मने॥
 अन्यशिष्याय नो देयं दत्त्वा निरयमाप्नुयात्॥ २८॥
 शिष्याय शुद्धमनसे गुरुभक्ताय पार्वति॥
 दीक्षिताय कुलीनाय देयं साधकसत्तमे॥ २९॥
 इतीदं देवि गायत्र्यास्तत्त्वसाररहस्यकम्॥
 गुह्यं गोप्यं न दातव्यं गोपनीयं प्रयत्नतः॥ ३०॥

इति श्री रूद्रयामलतन्त्रे गायत्रीरहस्ये
 परमार्थदेवतात्रिपदीगायत्रीपञ्चाङ्गं सम्पूर्णम्।



अथ गायत्रीराजोपचारपूजा

१. ध्यानम् —

मुक्ताविद्वमहेमनीलधवलच्छायैर्मुखैस्त्रीक्षणै —

युक्तामिन्दुकलानिद्वमुकुटां तत्वार्थवर्णात्मिकाम्

गायत्रीं वरदाऽभयाइकुशकशां शुभ्रं कपालं गदां

शङ्खं चक्रमथारविन्दयुगलं हस्तैर्वहन्तीं भजे ॥ १ ॥

२. आवाहनम् —

उषसि मागधमङ्गलगायनैर्जटिति जागृहि जागृहि जागृहि

अतिकृपाद्वकटाक्षनिरीक्षणैर्जगदिदं सुखिनं कुरु हेऽम्बिके ॥

ॐ ऐं हीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै आवाहनं समर्पयामि नमः ।

ॐ कनकमयवितर्दिशोभमानं

दिशि दिशि पूर्णसुवर्णकुम्भयुक्तम् ।

मणिमयशुभमण्डपं त्वमेहि

मयि कृपयेति समर्चनं ग्रहीतुम् ॥ २ ॥

३. आसनम् —

कनकमयवितर्दिस्थापिते तूलिकाद्ये

विविधकुसुमकीर्णे कोटिबालार्कवर्णे ॥

भगवति रमणीये रत्नसिंहासनेऽस्मिन्

उपविश पदयुग्मं हेमपीठे निधेहि ॥ ३ ॥

ॐ ऐं हीं श्रीं भगवत्यै हेमपीठे आसनं समर्पयामि नमः ॥

४. पाद्यम् —

दूर्वया सरसिजान्वितमातः कान्तया च सहितं कुसुमाद्यम् ।

पदयुग्मसदृशे पदयुग्मे पाद्यमेतदुररीकुरु मातः ॥

ॐ ऐं हीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै पाद्यपात्रात् पादयोः पाद्यं समर्पयामि नमः ॥ ४ ॥

५. अर्ध्यम् —

गन्धपुष्पयवसर्षपदूर्वासंयुतं कुशतिलाक्षतमिश्रम् ।

हेमपात्रनिहितं सहरलैरर्घ्यमेतदुरीकुरु मातः ॥

ॐ ऐ हीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै अर्घ्यपात्रात् हस्तयोरर्घ्यं समर्पयामि नमः ॥ ४ ॥

६. आचमनीयम् —

जलजद्युतिना करेण जातीफलकङ्गोललवङ्गगन्धयुक्तैः ।

अमृतैरमृतैरिवाश्रितैतद् भगवत्याचमनं विधीयताम् ॥

ॐ ऐ हीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै आचमनीयपात्रादाचमनीयं समर्पयामि नमः ॥ ५ ॥

७. मधुपर्कः —

मधुनिहितं कनकस्य सम्पुटे पिहितं रत्नपिधानकेन यत् ।

तदिदं भगवति करेऽर्पितं ते मधुपर्कं जननि प्रगृह्यताम् ॥

ॐ ऐ हीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै मधुपर्कपात्रात् मधुपर्कं समर्पयामि नमः ॥ ६ ॥

८. आचमनीयम् —

पाद्यान्ते परिकल्पितं च पदयोरर्घ्यं तथा हस्तयोः

सौधीभिर्मधुपर्कमम्ब मधुरं धारभिरास्वादय ।

तोयेनाचमनं विधेहि शुचिना गाङ्गेन यत् कल्पितं

साष्टाङ्गप्राणिपातयुक्तशिशुकं दृष्ट्या कृतार्थंकुरु ॥

ॐ ऐ हीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै आचमनीयपात्रादिदमाचमनीयं समर्पयामि नमः ॥ ८ ॥

९. स्नानम् —

गङ्गासरस्वतीरेवापयोष्णीनर्मदाजलैः ।

स्नापिताऽसि मया देवि प्रसीद परमेश्वरि ॥

ॐ ऐ हीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै नानानदीनां जलैः स्नानं समर्पयामि नमः ॥ ९ ॥

१०. पञ्चामृतस्नानम् —

पयो दधि धृतं चैव मधुशर्करया युतम् ।

पञ्चामृतं मयाऽऽनीतं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥

ॐ ऐ हीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै पञ्चामृतस्नानं समर्पयामि नमः ॥ १० ॥

११. पयः स्नानम् —

स्वधेनुजातं बलवीर्यवर्द्धनं दिव्यामृतात्यन्तरसप्रदं शुभम् ।

श्री चण्डिके दुग्धसमुद्रसम्भवे गृहण दुग्धं मनसा समर्पितम् ॥

ॐ ऐ ह्रीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै दुग्धस्नानं समर्पयामि नमः ॥ ११ ॥

१२. दधिस्नानम् —

क्षीरोद्भवं स्वादु सुधामयं च श्रीचन्द्रकान्तिसदृशं सुशोभनम् ।

श्री चण्डिके शुभनिशुभनाशिनि स्नानार्थमङ्गीकुरु चार्पितं दधि ॥

ॐ ऐ ह्रीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै दधिस्नानं समर्पयामि नमः ॥ १२ ॥

१३. घृतस्नानम् —

श्रीक्षीरजोद्भूतमिदं मनोजं प्रदीप्तवह्निद्युतिपावितं च ।

श्रीचण्डिके दैत्यविनाशदक्षे हैयङ्गवीनं परिग्रहयतां च ॥

ॐ ऐ ह्रीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै घृतस्नानं समर्पयामि नमः ॥ १३ ॥

१४. मधुस्नानम् —

मधुर्युमिश्रं मधुमक्षिकागणैर्वृक्षालिरम्ये मधुकानने चितम् ।

श्रीचण्डिके शङ्करप्राणवल्लभे स्नानार्थमङ्गीकुरु तेऽर्पितं मधु ॥

ॐ ऐ ह्रीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै मधुस्नानं समर्पयामि नमः ॥ १४ ॥

१५. शर्करास्नानम् —

पूर्णेषुकाम्भोधिसमुद्भवामिमां माणिक्यमुक्ताफलदानमंजुलाम् ।

श्रीचण्डिके चण्डविनाशकारिणि स्नानार्थमङ्गीकुरु शर्करां शुभाम् ॥

ॐ ऐ ह्रीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै शर्करास्नानं समर्पयामि नमः ॥ १५ ॥

१६. जलस्नानम् —

ॐ तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः सम्भृतं पृष्ठदाज्यम् ।

पशुस्तांश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ॥

ॐ ऐ ह्रीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै जलस्नानं समर्पयामि नमः ॥ १६ ॥

१७. इक्षुरसस्नानम् —

ॐ ऐ ह्रीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै इक्षुरसस्नानं समर्पयामि नमः ॥ १७ ॥

१८. सुगन्धितैलम् –

एतत्वम्पकतैलमम्ब विविधैः पुष्टैर्मुहर्वासितं

न्यस्तं रत्नमये सुवर्णचषके भूज्ञैर्भ्रमद्विर्वतम् ॥

सानन्दं शुभसुन्दरीभिरभितो हस्ते धृते चिन्मये

केशेषु भ्रमरप्रभेषु सकलस्वाङ्गेषु चालिप्यताम् ॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै सुगन्धितैलं समर्पयामि नमः ॥ १८ ॥

१९. उद्वर्तनस्नानम् –

मातः कुड्कुमपङ्कनिर्मितमिदं देहे तवोद्वर्तनं

भक्त्याहं कलयामि हैमरजसा समिश्रितं केसरैः ।

केशानानामलकैर्विशोध्य विशदं कस्तूरिकाद्यर्चितैः

स्नानं ते नवरत्नकुम्भविधिना संवासितोष्णोदकैः ॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै उद्वर्तनस्नानं समर्पयामि नमः ॥ १९ ॥

२०. सुगन्धिजलम् –

एलोशीरसुवासितैः सकुसुमैर्गङ्गादितीर्थोदकैः

मणिक्यादिकमौक्तिकामृतयुतैः स्वच्छैः सुवर्णोदकैः ।

मन्त्रान् वैदिकतान्त्रिकान् परिपठन् सानन्दमत्यादरं

स्नानं ते परिकल्पयामि जननि स्नेहात्त्वमङ्गीकुरु ॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै सुगन्धिजलस्नानं समर्पयामि नमः ॥ २० ॥

२१. शुद्धोदकस्नानम् –

उद्गन्धैरगुरुद्भवैः सुरभिणा कस्तूरिकावारिणा

स्फूर्जत् सौरभयक्षकर्दमजलैः काश्मीरनीलैरपि ॥

पुष्पाम्भोभिरशेषतीर्थसलिलैः कर्पूरवासोभैः

स्नानं ते परिकल्पयामि कमले भक्त्या तदङ्गीकुरु ॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि नमः ॥ २१ ॥

२२. वस्त्रम् –

बालार्कद्युति ददिमीयकुसुमप्रस्पद्धि सर्वोत्तमं

मातस्त्वं परिधेहि दिव्यवसनं भक्त्या मया कल्पितम् ।

मुक्ताभिर्ग्रथितं च कञ्चुकमिदं स्वीकृत्य पीतप्रभं
तपस्वर्णसमानवर्णमतुलं प्रावारमङ्गीकुरु ॥
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भगवत्यै गायत्रै वस्त्रं समर्पयामि नमः ॥ २२ ॥

२३. उपवस्त्रम् —

कौशेयैर्ग्रथितं दिव्यं नानरत्नयुतं वरम् ।
उपवस्त्रं मया दत्तं गृहण परमेश्वरि ॥
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भगवत्यै गायत्रै उपवस्त्रं समर्पयामि नमः ॥ २३ ॥

२४. आचमनम् —

भूपालदिक्पालकिरीटरत्नमरीचियोगार्चितपादपीठैः ।
देवैः समाराधितपादपद्मैः श्रीचण्डिके स्वाचमनं गृहण ॥
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भगवत्यै गायत्रै आचमनं समर्पयामि नमः ॥ २४ ॥

२५. पादुके —

नवरत्नयुते मयार्पिते कमनीये तपनीयपादुके ।
सविलासमिदं पदद्वयं कृपया देवि तयोर्निधीयताम् ॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भगवत्यै गायत्रै रत्नखचितस्वर्णनिर्मिते पादुके समर्पयामि नमः ॥ २५ ॥

२६. मण्डपप्रवेशम् —

नानारत्नसमाकीर्ण मणिस्तम्भविराजितम् ।
मण्डपं प्रविश त्वं हे मातः शीघ्रं प्रसीद मे ॥
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भगवति मातः मण्डपं प्रविश ते नमः ॥ २६ ॥

२७. सिंहासनारोहणम् —

मुक्ताविद्वमनीलमरकततमणिप्रख्ये शुभेऽत्युज्जवले
तिग्मांशुप्रविकासिहेमरचिते सिंहैः सदालङ्कृते ।
कौशेयैः सुसमावृतेऽतिमृदुले नानोपधानावृते
मातस्त्वं पदवीं निधेहि कृपया दिव्येऽति सिंहासने ॥
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भगवति गायत्रि सिंहासनमधिरुद्घाताम् नमः ॥ २७ ॥

२८. केशपाशसंस्कारः —

बहुभिरगुरुधूपैः सादरं धूपयित्वा

भगवति तव केशान् कङ्कतैर्मर्जयित्वा ॥

सुरभि(कमलवृन्दै—)श्चम्पकैश्चार्चयित्वा

झटिति कनकसूत्रैर्जट्यन् वेषयामि ॥

३५ ऐं हीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै केशपाशान् वेष्टितुं प्रार्थयामि नमः ॥ २८ ॥

२९. सौवीराज्जनम् —

सौवीराज्जनमिदमम्ब चक्षुषोस्ते

विन्यस्तं कनकशलाकया मया यत् ।

तनूनं मलिनमपि त्वदक्षिसङ्गात्

ब्रह्मेन्द्राद्यभिलषणीयतामियाय ॥

३५ ऐं हीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै सौवीराज्जनं समर्पयामि नमः ॥ २९ ॥

३०. अलङ्काराणि —

मञ्जीरान् पदयोर्निधाय रुचिरान् विन्यस्य काञ्चीं कटौ

मुक्ताहारमुरोजयोरनुपमं नक्षत्रमालां गले ।

केयूराणि भुजेषु रत्नवलयश्रेणीं करेषु क्रमात्

ताटङ्के तव कर्णयोर्विनिदधे शीर्षे च चूडामणिम् ॥

धम्मिल्ले तव देवि हेमकुसमान्याशाय भालस्थले

मुक्ताराजिविराजि हेमतिलकं नासापुटे मौलिकाम् ।

मातर्मैक्तिकजालिकां च कुचयोः सर्वाङ्गुलीषूर्मिकाः

कटयां काञ्चनकिङ्किणीं विनिदधे रत्नावतंसौ श्रुतौ ॥

३५ ऐं हीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै नानालङ्काराणि समर्पयामि नमः ॥ ३० ॥

३१. गन्धम् —

प्रत्यङ्गं परिमार्जयामि शुचिना वस्त्रेण संप्रोक्षितं

कुर्वे केशकलापमायततरं धूपोत्तमैर्धूपितम् ।

काशमीरगुरुद्वैर्मलयजैः संघर्ष्य सम्पादितं

भक्तत्राणपरे (विशुद्ध—) विमले श्रीचन्दनं गृह्णताम् ॥

३० ऐं हीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै गन्धं समर्पयामि नमः ॥ ३१ ॥

३२. कुइकुम् —

मातर्भलितले तवातिविमले काश्मीरकस्तूरिका—

उगुसभिः संवलितं करोमि तिलकं देहेऽङ्गरागं हि तत् ।

वक्षोजादिषु यक्षकर्दमरसं सिक्त्वा च पुष्पावृतिं

पादौ कुइकुमलेपनादिभिरहं सम्पूजयामि क्रमात् ॥

३० ऐं हीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै कुइकुमं समर्पयामि नमः ॥ ३२ ॥

३३. कज्जलम् —

चाम्पेयकपूरकचन्दनादिभिर्नानिविधैर्गन्धचयैः सुवासितम् ।

नेत्राञ्जनार्थाय हरिमणिप्रधं श्रीचण्डिके स्वीकुरु कज्जलं शुभम् ॥

३० ऐं हीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै कज्जलं समर्पयामि नमः ॥ ३३ ॥

३४. अक्षतान् —

रत्नाक्षतैस्त्वां परिपूजयामि मुक्ताफलैर्वा रुचिरैरविद्धैः ।

अखण्डितैर्देवि यवादिभिर्वा काश्मीरपङ्गाङ्गिततण्डुलैर्वा ॥

३० ऐं हीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै अक्षतान् समर्पयामि नमः ॥ ३४ ॥

३५. अत्तरम् —

जननि चम्पतैलमिदं पुरो मृगमदः पटवासक ऐडकः ।

विपुलगन्धमिदं च चतुःसमं सपदि सर्वमिदं परिगृह्यताम् ॥

३० ऐं हीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै परिमलं समर्पयामि नमः ॥ ३५ ॥

३६. सिन्दूरम् —

सीमन्ते ते भगवति मया सादरं न्यस्तमेतत्

सिन्दूरं ते हृदयकमले हर्षवर्षं तनोतु ।

बालादित्यद्युतिरिव सदा लोहितायस्यकान्ति—

शचन्तर्धन्तं हरतु सकलं चेतसा चिन्तयामि ॥

३० ऐं हीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै सिन्दूरं समर्पयामि नमः ॥ ३६ ॥

३७. मुकुटम् —

३० ऐं हीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै नवरत्नजटितस्वर्णमुकुटं समर्पयामि नमः ॥ ३७ ॥

३८. पुष्टाणि —

मन्दारकुन्दकरवीरलवङ्गपुष्टै—

स्त्वां देवि संततमहं परिपूजयामि ।

जातीजपाबकुलचम्पककेतकादि—

नानाविधानि कुसुमानि च तेऽर्पयामि ॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै नानाविधानि पुष्टाणि समर्पयामि नमः ॥ ३८ ॥

३९. पुष्टमाला —

पुष्टौधैर्दीतयद्बिद्धिः सततपरिचलत् कान्तिकल्लोलजालैः

कुर्वणा मज्जदन्तः करणविमलताशोभितेयं त्रिवेणी ।

मुक्ताभिः पद्मरागैर्मरकतमणिभिर्निमिता दीप्यमानैः

नित्यं हारं त्वं भगवति कमले गृहयतां कण्ठमध्ये ॥ ३९ ॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै पुष्टमालां समर्पयामि नमः ॥ ३९ ॥

४०. श्वेतचूर्णम् —

मन्दारवल्लीकरवीरसम्भवं कर्पूरपाटीरसुवासितं सितम् ।

श्रीश्वेतचूर्णं विधिना समर्पितं प्रीत्या त्वमङ्गीकुरु मातरद्य ॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै श्वेतचूर्णं समर्पयामि नमः ॥ ४० ॥

४१. रक्तचूर्णम् —

प्रत्यूषबालार्कमयूखसन्निभं जातीफलैलागुरुणा सुवासितम् ।

श्रीरक्तचूर्णं मनसा मयार्पितं प्रीत्यां त्वमङ्गीकुरु मातरद्य ॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै रक्तचूर्णं समर्पयामि नमः ॥ ४१ ॥

४२. हरिद्रा —

हरिद्रुमोत्थामतिपीतवर्णा सुवासितां चन्दनपारिजातैः ।

अनन्यभावेन समर्पितं ते मातर्हरिद्रामुररीकुरुस्व ॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै हरिद्रां समर्पयामि नमः ॥ ४२ ॥

४३. कुड्कुमम् —

कुड्कुमं कामनादिव्यं कामनाकामसम्भवम् ।

कुड्कुमेनार्चिता देवि प्रसीद परमेश्वरि ॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै कुइकुमं समर्पयामि नमः ॥ ४३ ॥

४४. अबीरगुललाम् —

अबीरं च गुलालं च चोवाचन्दनमेव च।

अबीरेणार्चिता देवि ऋतं शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै अबीरं समर्पयामि नमः ॥ ४४ ॥

४५. धूपम् —

लाक्षारसमिलितैः सिताभ्रसहितैः श्रीवाससंमिश्रितैः

कर्पूराकलितैः सितामधुयुतैर्गोसर्पिषाऽलोडितैः।

श्रीखण्डागुरुगुलुप्रभृतिभिर्नानाविधैर्वस्तुभि—

धूपं ते परिकल्पयामि जननि तद्वप्मङ्गीकुरु ॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै धूपमाग्रापयामि नमः ॥ ४५ ॥

४६. दीपम् —

रत्नालङ्कृतहेमपात्रनिहितैर्गोसर्पिषा दीपितै—

दीपैर्दीर्घतरान्धकारभिदुरैर्वालार्ककोटिप्रभैः।

आताम्रज्वलदुज्ज्वलद् गगनवद् रत्नप्रदीपैः सदा

मातस्त्वामहमादरादनुदिनं नीराज्याम्युज्ज्वलैः॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै दीपं दर्शयामि नमः ॥ ४६ ॥

४७. नैवेद्यम् —

मातस्त्वां दधिदुग्धपायसमहाशाल्यन्संतालिका

सूपापुपसिताधृतैः सवटकैः सक्षौद्ररभाफलैः।

एलाजीरकहिङ्गनागरनिशाकौस्तुम्बरैः संस्कृतैः

शाकैः शाकयुतैः सुधादिसरसैः सन्तर्पयाम्यर्पितैः॥

सासूपसूपदधिदुग्धसिताधृतानि

सुस्वादुभद्यपरमान्पुरःसराणि ।

शाकील्लसनमरिचजीरकत्वलिलकानि

भक्ष्याणि भक्ष जगदम्ब मयार्पितानि ॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यैनानाविधैरिपक्वसुमधुरपक्वफलयुक्त

नैवेद्यं निवेदयामि नमः ॥ ४७ ॥

४८. आचमनीयम् —

गङ्गोत्तरीवेगसमुद्भवेन सुशीतलेनापि मनोहरेण।

तत् पद्मपत्राक्षिं मयाऽर्पितेन शाङ्कोदकेनाचमनं कुरुस्व॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै नैवेद्यान्ताचमनीयं जलं समर्पयामि नमः ॥४८॥

४९. पूर्वामधुरपानम् —

क्षीरमेतदिदमुत्तमोत्तमं प्राज्यमाज्यमिदमुज्ज्वलं मधु।

पानमेतदमृतोपमं त्वया सम्म्रमेण परिणीयतां मुहुः॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै नैवेद्यान्ताचमनीयं जलं समर्पयामि नमः ॥४९॥

५०. जलम् —

अतिशीतमुशीरवासितं तपनीयोपवने निवेदितम्।

पटपूतमिदं जितामृतं शुचि गङ्गामृतमेव पीयताम्॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै जलं समर्पयामि नमः ॥ ५० ॥

५१. उत्तराचमनीयम् —

नीहारहारं वनसारसारं प्रकल्पितानेकसुगन्धिभारम्।

शीताम्बु जाम्बुनदपात्रवर्ति पीत्वा हि विश्वेश्वरि पीयतां पुनः॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै उत्तराचमनीयं समर्पयामि नमः ॥ ५१ ॥

५२. करोदवर्तनम् —

उष्णोदकैः पाणियुगं मुखं च प्रक्षाल्य मातः कलधौतपात्रे।

कर्पूरमिश्रेण सकुइकुमेन हस्तौ समुद्वर्तय चन्दनेन॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै करोदवर्तनं गन्धं समर्पयामि नमः ॥ ५२ ॥

५३. ताम्बूलम् —

कपूरेण युतैः लवङ्गसहितैः कङ्कोलचूर्णान्वितैः

सुस्वादुक्रमुकैः सगौरखदिरैः सुस्थिर्जातीफलैः।

मातः केतकपत्रकेन्दुरुचिभिस्ताम्बूलवल्लीदलैः

सानन्दं मुखमण्डनीयमतुलं ताम्बूलमङ्गीकुरु॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै ताम्बूलं समर्पयामि नमः ॥ ५३ ॥

५४. दक्षिणा —

अथ वहुमणिमिश्रैर्मौकितकैस्त्वां विकीर्य

त्रिभुवनकमनीये पूजयित्वा च वस्त्रैः ।

मिलितविविधयुक्तैदिव्यलावण्ययुक्तां

जननि कनकवृष्टिं दक्षिणां तेऽर्पयामि ॥

३० ऐं हीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै दक्षिणां समर्पयामि नमः ॥ ५४ ॥

५५. आरार्तिक्यम् —

३० कर्पूरगौरं करुणावतारं संसारसारं भुजगेन्द्रहारम् ।

सदा वसन्तं हृदयारविन्दे भवं भवानीसहितं नमामि ॥

३० इदं हविः प्रजननं मेऽस्तु दशवीरं सर्वगणं स्वस्तये ।

आत्मसनि प्रजासनि पशुसनि लोकसन्यभयसनि ।

अग्निं प्रजां बहुलां मेऽकरोतु अन्नं पयो रेतोऽस्मासु धत्त ।

३० ऐं हीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै आरार्तिक्यं समर्पयामि नमः ॥ ५५ ॥

५६. प्रदक्षिणा —

पदे पदे या परिपूजकेभ्यः सद्योऽश्वमेधादिफलं ददाति ।

तां सर्वपापक्षयहेतुभूतां प्रदाक्षिणां ते परितः करोमि ॥

३० ऐं हीं श्रीं भगवत्या गायत्र्याः प्रदाक्षिणां करोमि नमः ॥ ५६ ॥

५७. मन्त्रपुष्पाज्जलिः —

३० यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।

ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥

३० ऐं हीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै मन्त्रपुष्पाज्जलिं समर्पयामि नमः ॥ ५७ ॥

५८. प्रार्थना —

३० श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पाशर्वे

नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् ।

इष्णान्निषाणामुम्म इषाण सर्वलोकम्म इषाण ॥

३० विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात् ।

संबाहुभ्यां धमति सम्पत्तैर्दीर्वाभूमी जनयन् देव एकः ॥
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भगवती गायत्र्यों प्रार्थयामि नमः ॥ ५८ ॥

५९. विशेषाधर्घम् —

कलिङ्गकोशातकसंयुतानि जम्बीरनारङ्गसमन्वितानि ।
सुनारिकेलानि सदाडिमानि फलानि ते देवि समर्पयामि ॥
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै विशेषाधर्घ समर्पयामि नमः ॥ ५९ ॥

६०. छत्रम् —

मातः काञ्चनदण्डमण्डितमिदं पूर्णेन्दुविम्बप्रभं
नानारत्नविशोधि हेमतिलकं लोकत्रयाहलादकम् ।
भास्वन्मौक्तिकजालिकापरिवृतं प्रीत्यात्महस्ते धृतं
छत्रं ते परिकल्पयामि जननि त्वष्टा स्वयं निर्मितम् ॥
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै छत्रं समर्पयामि नमः ॥ ६० ॥

६१. चामरम् —

शरदिन्दुमरीचिगौरवर्णेः माणिक्यमुक्ताविलसत्सुदण्डैः ।
जगदम्ब विचित्र चामरैस्त्वामहमानन्दभरेण वीजयामि ॥
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भगवतीं गायत्रीं चामरेण वीजयामि नमः ॥ ६१ ॥

६२. आदर्शः—

मार्तण्डमण्डलनिभो जगदम्ब योऽयं
भक्त्या मया मणिमयो मुकुरोऽपितस्ते ।
पूर्णेन्दुबिम्बरुचिरं वदनं स्वकीय—
मस्मिन् विलोक्य विलोलविलोचनेन ॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भगवतीं गायत्रीं दर्पणं दर्शयामि नमः ॥ ६२ ॥

६३. अस्त्रम् —

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै सुदर्शनाद्यस्त्रं समर्पयामि नमः ॥ ६३ ॥

६४. शस्त्रम् —

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भगवत्यै गदाशाखांपाशादि शस्त्रं समर्पयामि नमः ॥ ६४ ॥

६५. वाहनम् —

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै हंससिंहगरुडादि वाहनं समर्पयामि नमः ॥६५॥

६६. सैन्यम् —

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै सैन्यं समर्पयामि नमः ॥

६७. नृत्यम् —

भ्रमविलोलितकुन्तलवृन्दका गलितमाल्यविकीर्णसुभूमयः।

झटिति झइकृतिभिर्जगदम्बिके मृदुरवा हृदयं सुखयन्तु ते॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भगवत्यै गायत्र्यै नृत्यं समर्पयामि नमः ॥ ६७॥

६८. प्रणामः —

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भगवतीं गायत्रीं साष्टाङ्गं प्रणमामि ।

इति राजोपचारमानसपूजा समाप्ता ।

ঁঁঁঁঁঁঁঁ

समाप्तिं चागादियं गायत्रीउपासनापद्धतिः।

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

